इकाई 3 उपन्यास का रूपान्तरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उपन्यास और टेलीविज़न धारावाहिक/फ़िल्म में अंतर

3.3 रूपान्तरण और उसका पहला चरण : कथा–सार की रूपरेखा

3.4 उपन्यास के प्रतिपादन की समस्या

3.5 चरित्र, चरित्रांकन और चरित्रगत प्रकृति

3.6 संपादन

3.7 रूपान्तरण की प्रक्रिया

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास के प्रश्न

3.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने कहानी की पटकथा लिखने का कौशल अर्जित किया। इस इकाई में हम साहित्य की एक प्रमुख विधा उपन्यास के पटकथा–रूपान्तरण पर विचार करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप उपन्यास विधा की विशेषताएँ जान सकेंगे/सकेंगी। आप उपन्यास और फिल्म टेलीविज़न धारावाहिक का अंतर स्पष्ट कर, रूपान्तरण के विभिन्न चरणों से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी। उपन्यास के प्रतिपादन से संबंधित पहलुओं को आप समझ सकेंगे/सकेंगी। चरित्र निर्माण की प्रविधि सीख सकेंगे/सकेंगी और पटकथा के सम्पादन और रूपान्तरण की प्रक्रिया से भी आप अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।

3.1 प्रस्तावना

आज टेलीविज़न धारावाहिक काफ़ी प्रसिद्ध विधा है। पहले सिनेमा के माध्यम से हम न केवल मनोरंजन करते थे, बल्कि समाज और देश में क्या घटित हो रहा है, इससे भी परिचित होते थे। सिनेमा को देखने के लिए पहले हमें सिनेमा हॉल जाना पड़ता था और इसके लिए चार–पाँच घंटे का समय हमें निकालना पड़ता था लेकिन टेलीविज़न के छोटे पर्दे ने न केवल हमारे समय की बचत की है बल्कि मनोरंजन और शिक्षा के लिए हमें काफ़ी सामग्री भी दी है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में घटित घटनाएँ उसके जीवन की भी घटनाएँ हैं इसलिए जब वह टेलीविज़न धारावाहिक देखता है तो उसमें भी वह जीने लगता है। उसकी सामाजिक और आध्यात्मिक चेतना निरंतर उसे परिचालित करती है। इससे वह टेलीविज़न पर धारावाहिक को देखने में सर्वाधिक रूचि लेता है। निर्माता और निर्देशक उपन्यासों के आधार पर टेलीविज़न धारावाहिकों के लिए पटकथा तैयार करते हैं। इस इकाई में आपको उपन्यास से टेलीविज़न की पटकथा के रूपांतरण

की सारी तकनीकों और ऐसे नए पक्षों से परिचित कराया जाएगा, जिसके आधार पर आप भी इस क्षेत्र में दक्षता हासिल करने में समर्थ हो जाएँगे।

3.3 उपन्यास और फिल्म टेलीविज़न धारावाहिक में अंतर

उपन्यास क्या है?

''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र मानता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'' यह परिभाषा हिंदी के महान उपन्यासकार प्रेमचंद की दी हुई है। वैसे शब्दकोशों और विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि यह बड़े आकार का ऐसा गद्य आख्यान हैं जिसके अंतर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों, घटनाओं और कार्यों को समग्रता में चित्रित किया जाता है।

इन परिभाषाओं की भी अपनी सीमा है क्योंकि उपन्यास पूरी तौर पर काल्पनिक भी हो सकता है। विज्ञान कथाओं, जासूसी, रहस्य, रोमांच आदि से संबंधित कथाओं को लेकर भी उपन्यास लिखे जाते हैं। बहरहाल, किसी भी उपन्यास में इतना तो ज़रूर होता है :

- कथा सूत्र (थीम)
- मुख्य कथानक (प्लाट)
- उप–कथानक (अंडर प्लाट)
- नायक
- नायिका
- सहायक पात्र
- समस्या और समाधान
- चरित्र–चित्रण
- संवाद
- चरमोत्कर्ष (क्लाइमैक्स)

उपन्यास का फलक कहानी की तुलना में काफी बड़ा होता है। लिहाजा कहानी पर आधारित टेलीविज़न फिल्म (टेलीफिल्म) की अवधि छोटी होगी। यह प्रायः 20 या 60 मिनट की होती है लेकिन उपन्यास पर आधारित टेलीविज़न फिल्म की अवधि आम तौर पर इससे बड़ी होगी इसलिए टेलीविज़न पर जब उपन्यास का फिल्मांकन दिखलाते हैं तो वह कई किस्तों में होती है। यानी उपन्यास धारावाहिक में बदल जाता है।

वैसे टेलीविज़न को साहित्यिक उपन्यास अधिक रास नहीं आता। हिंदी में बने टेलीविज़न कार्यक्रमों की संख्या लाखों में होगी लेकिन उपन्यासों पर बने

धारावाहिकों की संख्या उंगली पर गिनी जा सकती है। प्रेमचंद, शरतचंद्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, तकषी शंकर पिल्लै, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल आदि के उपन्यासों पर धारावाहिक बने हैं। ऐसे धारावाहिकों की गिनती भले ही कम हो लेकिन धारावाहिकों का सिरमौर कहा जाने वाला 'चंद्रकांता' देवकीनंदन खत्री के उपन्यास से प्रेरित था। लोकप्रियता में अभूतपूर्व कीर्तिमान बनाने वाले इस धारावाहिक के लेखक थे प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर। दूसरा जाना–माना उदाहरण है भीष्म साहनी के उपन्यास पर बने धारावाहिक 'तमस' का।

हिंदी फिल्मों में हिंदी उपन्यास की क्या स्थिति है? कभी प्रेमचंद, अमृतलाल नागर फिल्म लिखने मुंबई गए थे। उनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, सुदर्शन, भगवती प्रसाद वाजपेयी, केशव प्रसाद मिश्र, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, राही मासूस रजा, मनोहर श्याम जोशी आदि का हिंदी फिल्मों से कमोबेश जुड़ाव रहा। भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' पर इसी नाम से दो बार फिल्म बनी। दोनों बार वह सफल रही और इसके निर्देशक थे केदार शर्मा। जब यह फिल्म पहली बार बनी तो इसमें कलाकार थे नान्द्रेकर, ज्ञानी जी और मेहताब। निर्माता ने फिल्म बनाने के लिए उपन्यास के लेखक भगवतीचरण वर्मा से अनुमति नहीं ली थी। इसमें लेखक का नाम भी केदार शर्मा ही बताया गया था। फिल्म खूब चली। आखिरकार भगवतीचरण वर्मा, जो स्वयं वकील थे, ने निर्माता पर मुकदमा कर दिया। वे मुकदमा जीत भी गए। तब उन्हें नाम और पैसा दोनों दिया गया। वैसे तो निर्माता जब उपन्यास पर फिल्म बनाने का अधिकार खरीदता है तो उपन्यास में परिवर्तन करने का अधिकार भी प्राप्त कर लेता है लेकिन कुछ ऐसे भी लेखक होते हैं जो अपने उपन्यास की सामग्री में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं देते। इसके बावजूद यदि निर्माता किसी किस्म का परिवर्तन मूल उपन्यास की सामग्री में करते हैं तो न्यायिक विवाद की नौबत आ जाती है।

हिंदी उपन्यासों पर आधारित फिल्में तो थोड़ी ही बनीं, सफल तो और भी कम हुईं लेकिन सफल फिल्मों में भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर आधारित और कमलेश्वर के 'आगामी अतीत' पर आधारित 'मौसम' और 'काली आंधी' पर आधारित 'आंधी' के नाम लिए जा सकते हैं। दूसरी बार बनी चित्रलेखा फिल्म में अशोक कुमार, प्रदीप कुमार और मीना कुमारी कलाकार थे।

चूँकि उपन्यास पर धारावाहिक, फिल्म और टेलीफिल्म तीनों बन सकते हैं और हम चर्चा कर रहे हैं उपन्यास के टेलीविज़न धारावाहिक रूपान्तरण का इसलिए उपन्यास और टेलीविज़न धारावाहिक के अंतर को जान लेना ज़रूरी है।

प्रविधि / शिल्प	उपन्यास	टेलीविज़न धारावाहिक
• लंबाई	असीमित / आवश्यकतानुसार	कई एपीसोड
• घटनाओं की प्रस्तुति	वर्णन	दृश्यांकन
• दृश्य संख्या	असीमित / आवश्यकतानुसार	एपीसोड की मांग के अनुसार
• पात्रों की संख्या	असीमित / आवश्यकतानुसार	एपीसोड की मांग के अनुसार

प्रविधि / शिल्प	उपन्यास	टेलीविज़न धारावाहिक
• समय क्रम	पूर्ण स्वतंत्रता	एक एपीसोड की मांग के साथ 30 मिनट का
• शैली	कई प्रकार की	पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) अग्रदीप्ति (फ्लैश फॉरवर्ड)
• स्थल	असीमित	असीमित
• संवाद	असीमित	आंशिक रूप से सीमित
• चरित्रों के विचार	वर्णित	अवर्णित
• लेखक के विचार	वर्णित	अवर्णित
• पात्रों के उद्देश्य	वर्णित	घटनाओं के सहारे प्रदर्शित
• दर्शक के पास समय	असीमित	सीमित
• दुबारा पढ़ना / देखना	संभव	असंभव[1]
• अधूरा पढ़ना / देखना	संभव	असंभव[2]

3.3 रूपान्तरण और उसका पहला चरण : कथा–सार की रूपरेखा

लेखक अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का, वहीं टेलीविज़न धारावाहिक तस्वीरों का उपयोग करता है लेकिन बात इतनी ही नहीं है। टेलीविज़न धारावाहिक केवल छवियों या चाक्षुषों की भाषा नहीं है। यह टेलीविज़न धारावाहिक शब्दों, ध्वनियों और संगीत का भी उपयोग करता है। टेलीविज़न धारावाहिक में शब्द का कितना उपयोग किया जाता है, एक उदाहरण से हम इस बात को स्पष्ट करते हैं।

एक मंझोले आकार का उपन्यास लीजिए। इसमें हर पृष्ठ पर प्रायः 250 शब्द होंगे। उपन्यास की पृष्ठ संख्या 200 है तो इसमें 50,000 शब्द होंगे लेकिन इसकी स्क्रिप्ट टेलीविज़न धारावाहिक के एपीसोड की संख्या के अनुरूप बनेगी। इसमें दृश्यों की अधिकता होगी जिससे शब्दों की संख्या कम होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि उपन्यास की तुलना में टेलीविज़न धारावाहिक कम शब्दों से काम चला लेता है। उपन्यास पर पटकथा की स्क्रिप्ट लिखे जाने में शब्द कम हो जाएँगे क्योंकि वहाँ हम दृश्यों से काम लेंगे। अब पटकथा और संवाद लेखक का इसमें कमाल यह है कि वह इतने कम शब्दों में उपन्यास की पूरी कथा और उसके भाव को इस तरह से अभिव्यक्त कर देता है कि कोई प्रमुख घटना, चरित्र, प्रसंग छूट नहीं पाते।

यह आशंका हो सकती है कि जब उपन्यास से इतनी बड़ी संख्या में शब्द कम किए जाएँगे तो उपन्यास कितना बच पाएगा? बचता ही नहीं बखूबी बचता है। जिस प्रसंग को उपन्यासकार अपने उपन्यास में दस पृष्ठों के वर्णन और संवादों के सहारे अभिव्यक्त करेगा कैमरा उसे दो मिनट में दिखला देता है। यह कैसे होता है? मान लीजिए कि उपन्यास में अध्याय है कि एक ड्रॉईंग रुम में नायक–नायिका में

[1] यू–ट्यूब के चलते अब यह संभव है।
[2] यू–ट्यूब के चलते अब यह संभव है।

बहुत दिनों के बाद मुलाकात होती है। दोनों के बीच मनमुटाव है। इस ड्रॉईंग रूम में वे पहली बार आए हैं। दोनों के बीच झगड़ा होता है और जब पता चलता है कि नायक की नौकरी छूट गई है तो नायिका पिघल जाती है। दोनों के बीच मनमुटाव का कारण भी नायक की समय खाऊ नौकरी ही थी। इसी का वर्णन उपन्यासकार करेगा तो वह सबसे पहले माहौल का चित्रण विवरणों के माध्यम से करेगा। माहौल यानी ड्रॉईंगरूम की सजावट यानी पुरानी कुर्सियाँ, सोफे, फायर प्लेस, पुराना रेडियो, दीवार पर लटकी शेर की खाल, बंदूक, हिरण का सींग, नायिका के जालिम पिता की तस्वीर, पुराने जमाने का बिजली पंखा, कालीन, खिड़की, पर्दे, खिड़की से दीखने वाला दृश्य। उपन्यासकार इन सबों का वर्णन सात पृष्ठों में करेगा। नायक–नायिका के संबंध में आई दरार का इतिहास डेढ़ पृष्ठ में करेगा। अब बच गए डेढ़ पृष्ठ। इसमें नायिका और नायक का झगड़ा, बहसबाजी और मेल–मिलाप सब आ जाएगा। वहीं कैमरा एक बार पैनिंग करके पूरा ड्रॉईंग रूम दिखला देगा, नायिका और नायक के बीच के प्रसंग के बीच बंदूक, नायिका के जालिम पिता की तस्वीर, खिड़की का फड़फड़ाता पर्दा और खिड़की से बाहर का दृश्य, बीच–बीच में आते रहेंगे। पूरा दृश्य तीन मिनट में खत्म हो जाएगा। इससे क्या निष्कर्ष निकलता है? पटकथा लेखक में उपन्यास के फालतू अंशों को छाँटने की समझ होनी चाहिए। उसमें उपन्यास के आवश्यक प्रसंगों और चरित्रों के पहचान की क्षमता होनी चाहिए।

प्रसिद्ध बांग्ला उपन्यासकार विमल मित्र का बहुप्रशंसित उपन्यास है – 'साहब, बीबी और गुलाम'। बांग्ला में इस उपन्यास को ख्याति मिली ही, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में इसके कई संस्करण छपे। इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर गुरुदत्त ने फिल्म बनाने का अधिकार खरीदा। उपन्यास उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण वाले कोलकाता के जीवन और एक जमींदार घराने की कथा पर आधारित था। उसकी काया भारी–भरकम यानी कोई चार सौ पृष्ठों की थी। गुरुदत्त के स्थायी लेखक अबरार अलबी ने पटकथा और संवाद लिखे। निर्देशन तो गुरुदत्त ने किया पर वे खुद अपने काम से संतुष्ट नहीं हुए तो अबरार अलबी को दुबारा निर्देशन करने का काम सौंप दिया। फिर उस पर तीन घंटे की फिल्म बनाई गई। इस बहुप्रशंसित फिल्म में मीना कुमारी, गुरुदत्त, वहीदा रहमान आदि के लाजवाब अभिनय और बेजोड़ संगीत को लोग आज भी याद करते हैं लेकिन कल्पना कीजिए कि विमल मित्र की उस बिखरी कथा में से महत्त्वपूर्ण कथा और चरित्रों को चुनने का सलीका पटकथा लेखन में नहीं होता तो क्या होता? पहला दुष्परिणाम तो यह होता कि फिल्म की लंबाई आठ घंटे वाली होती। फिर तो वह सिनेमाघर का मुँह भी नहीं देख पाती। समय की सीमा की समस्या हल कर भी ली जाती तो कथा–प्रसंगों और चरित्रों के चयन में गड़बड़ी होती। इससे फिल्म लचर रह जाती। सौभाग्य से इस उपन्यास को अबरार अलबी जैसा पटकथा लेखक मिला इसलिए एक असफल और रद्दी फिल्म की जगह यह यादगार फिल्म बन गई। टेलीविज़न धारावाहिक में भी लेखक में पटकथा और संवाद लेखन की कुशलता काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसी पर धारावाहिक की सफलता निर्भर करती है।

उपन्यास (एक तरह से देखें तो साहित्य की सभी विधाओं के संबंध में) और टेलीविज़न धारावाहिक में क्रमशः शब्दों और दृश्यों का प्रयोग होता है। दृश्य और शब्द में क्या फर्क है। दृश्य की खूबी होती है कि आप उसे तुरंत पहचान जाते हैं जबकि शब्द की प्रकृति काफी संकेतपूर्ण होती है। उपन्यास का टेलीविज़न

धारावाहिक में रूपान्तरण करने वाले पटकथा लेखकों को दोनों के बीच मौजूद इस मूलभूत अंतर को स्मरण रखना होता है। उपन्यास के शब्द–संकेतों को टेलीविज़न धारावाहिक के लिए उपयुक्त दृश्यों और चाक्षुषों में बदलना पटकथा लेखक का मुख्य दायित्व है। इस प्रक्रिया में भी टेलीविज़न धारावाहिक में प्रयुक्त शब्दों की संख्या घट जाती है।

टेलीविज़न धारावाहिक के दर्शक दृश्यों से अंतर्निहित विचार निकालते हैं जबकि उपन्यास (या कहें कि पूरे साहित्य) में विचार से दृश्यों का निर्माण होता है। इस तरह से देखें तो उपन्यास और टेलीविज़न धारावाहिक दोनों विपरीत हैं। उपन्यास सूक्ष्म से स्थूल की ओर तो टेलीविज़न धारावाहिक स्थूल से सूक्ष्म की ओर की यात्रा करता है। चूँकि दोनों की रचना की प्रक्रिया बिल्कुल विपरीत है इसलिए टेलीविज़न धारावाहिक के पटकथा लेखक को उपन्यास लिखने में परेशानी होती है और उपन्यासकार को पटकथा लेखन करने में लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इस कठिनाई को हल नहीं किया जा सकता। जैसे कहानी या उपन्यास लिखने के लिए कथाकार रियाज करता है जिससे उसकी कल्पनाशीलता और विश्लेषण – प्रणाली प्रशिक्षित हो जाती है। ठीक इसी तरह का रियाज कथाकार पटकथा लेखन का करे तो उसकी कल्पनाशीलता और विश्लेषण प्रणाली पटकथा लेखन की आवश्यकता के अनुरूप प्रशिक्षित हो जाएगा। हिंदी में कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, राही मासूम रजा ने दोनों विधाओं को साधा और साहित्य तथा पटकथा लेखन के क्षेत्र में विपुल काम किया है।

3.4 उपन्यास के प्रतिपादन की समस्या

उपन्यास के पाठकों को बगैर किसी जल्दबाजी के शब्दों के आधार पर अपनी कल्पना में दृश्य गढ़ना होता है। उपन्यासकार पाठकों को दृश्य गढ़ने के लिए तथ्य देता है। हाँ तथ्य प्रस्तुत करने का उसका अंदाज़ ज़रूर कलात्मक होता है लेकिन कल्पना में दृश्य गढ़ने की पूरी जिम्मेवारी पाठक की होती है। टेलीविज़न धारावाहिक में पटकथा लेखक की ज़िम्मेदारी उपन्यासकार से अलग होती है। चूँकि टेलीविज़न धारावाहिक में दृश्य या चाक्षुष बिंब तेज गति से दर्शक के सामने आते हैं इसलिए उसके पास अपनी कल्पना से दृश्य गढ़ने का अवकाश नहीं होता। इसके चलते पटकथा लेखक की ज़िम्मेदारी है कि वह दर्शकों के सम्मुख बना – बनाया दृश्य पेश करे।

स्वीडेन के विश्व–प्रसिद्ध फिल्मकार इंगमर बर्गमैन ने लिखा :

> ''लिखित शब्द पढ़ा जाता है और बुद्धि की सहायता से इच्छा–शक्ति उसे सचेत रूप से साकार करती है। लिखित शब्द धीरे–धीरे कल्पनाशीलता और भावनाओं पर भी प्रभाव डालता है। लेकिन फिल्म में यह प्रक्रिया अलग तरह की होती है....वहाँ इच्छा–शक्ति और बुद्धि दरकिनार हो जाती है और हम फिल्म को सीधे अपनी कल्पना में प्रवेश दे देते हैं। तस्वीरों का क्रम सीधे हमारी भावनाओं पर असर डालता है।''

फ़िल्मों की ही तरह टेलीविज़न धारावाहिक भी चाक्षुषों बिंबों, दृश्यों, ध्वनियों, संगीत और शब्दों से एक साथ संप्रेषण करता है इसलिए वह उपन्यास की तुलना में अधिक तेजी और प्रभावी ढंग से तत्काल संप्रेषण करता है। सीधे–सीधे भावनाओं

को जगाना कुछ कलाओं का लक्ष्य होता है। कुछ कलाएँ बुद्धि के रास्ते भावनाओं को आकर्षित करती हैं। ऐसी भी कला है जो दर्शक/पाठक को अनासक्त करती है। कुछ कलाएँ प्रतिबिंबन करती हैं। प्रतिबिंबन कला निष्क्रिय नहीं होती। यह दर्शकों में उत्तेजना, घृणा या क्रोध पैदा कर सकती है तो उन्हें रुला भी सकती है। टेलीविज़न धारावाहिक जैसी प्रतिबिंबन कला की यही शक्ति है।

उपन्यास और टेलीविज़न धारावाहिक की शक्तियों को आप जान चुके हैं लेकिन यह भी याद रखें कि टेलीविज़न धारावाहिक केवल भावनाओं का या उपन्यास केवल बौद्धिक खेल नहीं है। यदि ऐसा होता तो 'तमस' या 'निर्मला' जैसे टेलीविज़न धारावाहिक बौद्धिक विमर्श शुरू नहीं कर पाते और उपन्यास पढ़कर किसी पाठक की आँख नहीं भींगती। उपन्यास और फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक अपनी–अपनी शक्तियों का उपयुक्त स्थलों पर सटीक उपयोग कर मनचाहा प्रभाव पाठकों पर डालते हैं लेकिन ऐसे उपयुक्त स्थल फिल्म और उपन्यास में हर जगह नहीं होते।

आम तौर पर टेलीविज़न धारावाहिक में वाचक नहीं होता। इक्का–दुक्का प्रयोगात्मक टेलीविज़न धारावाहिक में वाचक मिल जाता है। पर ऐसे अपवादों की संख्या नगण्य है लेकिन उपन्यास में वाचक होता ही है। नाटक और टेलीविज़न धारावाहिक की प्रकृति एक जैसी होती है, इनमें कहानी वाचक के हस्तक्षेप के बगैर कही जाती है लेकिन आख्यान (इसमें कहानी और उपन्यास, दोनों को शामिल मानें) में कहानी और पाठक के बीच लेखक यानी वाचक अनिवार्य रूप से उपस्थित होता है। उपन्यास को पटकथा में रूपान्तरित करते वक्त इस वाचक को बाहर निकालना होता है। वाचक से कहानी को मुक्ति पटकथा लेखक कैसे दिलाता है? यह मुक्ति होती है और नहीं भी होती है। दरअसल टेलीविज़न धारावाहिक या फिल्म में उपन्यास वाले व्यक्तिवाचक की जगह कैमरा ले लेता है। वैसे यह तर्क दिया जा सकता है कि कैमरा अपने–आप तो चलता नहीं, उसे चलाने वाला व्यक्ति ही होता है। हाँ, कैमरा व्यक्ति ही चलाता है पर कैमरा एक व्यक्ति की मर्जी से नहीं चलता है। कैमरा कैसे चले इसमें कहानी में मौजूद बिंदु, पटकथा लेखक की परिकल्पना, कहानी पर्दे पर सहज घटित होते दिखाने में निर्देशक की सूझ और कैमरामैन के सुझाव सब इकट्ठे काम करते हैं। फिर यह किसी की मर्जी के बजाए यानी आत्म–परक होने के बजाए जनतांत्रिक और वस्तुपरक हो जाती है। जहाँ आत्म–परकता खत्म हुई, समझिए वहीं वाचक का कहानी से बहिर्गमन हुआ।

रूपान्तरण एक माध्यम से दूसरे माध्यम में हूबहू स्थानांतरण की प्रक्रिया नहीं है। उपन्यास अपने पाठक के बूते अपनी एक दुनिया निर्मित करता है, तो फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक चाक्षुष बिंबों ध्वनियों, संगीत और शब्दों के जरिए अपनी एक दुनिया निर्मित करते हैं। इसका अंतर स्पष्ट हो जाएगा। एक ही कहानी पर किसी कथाकार से कहा जाए कि उपन्यास लिखिए, उसी कहानी पर फिल्मकार फिल्म बनाए और उसी कहानी पर टेलीविज़न धारावाहिक लिखा जाए तो आप देखेंगे कि एक ही कहानी पर आधारित उपन्यास, फिल्म और टेलीविज़न धारावाहिक तीनों का व्यक्तित्व अलग–अलग है इसलिए प्रतिपादन, पटकथा और संवाद के जरिए रूपरेखा के आधार पर एक स्वतंत्र कलाकृति की रचना करनी होती है जो मूल रचना के मिजाज के करीब हो। अतः पटकथा लेखक पहले उपन्यास और प्रतिपादन को पढ़कर पटकथा लिखता है। अब यही प्रतिपादन उसके लिए प्राथमिक सामग्री है।

3.5 चरित्र, चरित्रांकन और चरित्रगत प्रकृति

कहानी इनसान और उसके क्रियाकलापों के बारे में होती है। कुछ लोग सिर्फ इनसान में दिलचस्पी रखते हैं तो कुछ उसके क्रियाकलापों में। उपन्यासकार चरित्र का चरित्रांकन करने में दर्जनों पृष्ठ खर्च करता है। कुछ फिल्मकार या टेलीविज़न धारावाहिक निर्माता/लेखक चरित्रांकन (कैरेक्टराइजेशन) को मनोवैज्ञानिक मामला समझकर टाल देते हैं लेकिन फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक की कहानी के लिए चरित्रांकन और चरित्र के क्रियाकलाप दोनों ज़रूरी होते हैं।

वैसे क्रियाकलाप का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। कोई न कोई तो उसे करता ही है। कोई इनसान क्यों कोई खास हरकत करता है, इसे जानने के लिए उसका चरित्र समझना होता है। यह सही है कि चरित्र अपने क्रियाकलाप से ही जीवंत होता है लेकिन दर्शक उसके क्रियाकलाप का औचित्य भी जानना चाहता है। यश चोपड़ा की फिल्म 'डर' में शाहरुख खान जूही चावला को डराता है। वह उससे मन ही मन प्यार भी करता है लेकिन अंतर्मुखी है इसलिए मन की बात नहीं कह पाता । प्यार करता है तो डराता क्यों है ? जूही चावला उससे प्यार नहीं करती वह सनी देओल से प्यार करती है। इस क्यों का जवाब दर्शक को चाहिए। यदि उसका (शाहरुख खान का) चरित्रांकन सही नहीं किया जाता तो दर्शक शाहरुख खान के इस व्यवहार को स्वीकार नहीं कर पाते और फिल्म सफल नहीं हो पाती। यही स्थिति टेलीविज़न धारावाहिक में भी देखी जाती है।

चूँकि आगे हम चरित्र, चरित्रांकन और चरित्रगत प्रवृत्ति जैसे शब्दों का इस्तेमाल करेंगे इसलिए आपको इनके बीच का अंतर जान लेना चाहिए। संक्षेप में चरित्र उसे कहते हैं जिसका अतीत, वर्तमान और भविष्य हो। वह किसी पेशे में हो, उसका परिवार हो, बाहरी संसार के बारे में उसका नज़रिया हो और उससे उसका संबंध हो। उसका कोई चरित्रगत प्रवृत्ति से आशय उसके स्वभाव से है। जैसे शाहरुख खान अंतर्मुखी है लेकिन अपना लक्ष्य पाने के लिए क्रूरता की हद तक वह जा सकता है। वह कोमल प्रेमी है पर प्रेम में विफलता उसे क्रूर बना देती है। इसे उस चरित्र की चरित्रगत प्रवृत्ति कहेंगे। आपने 'महाभारत' धारावाहिक में दुर्योधन की क्रूरता अवश्य देखी होगी। दुर्योधन की क्रूरता भी मनोविज्ञान सापेक्ष है। उसे लगता है कि पांडव उसका अधिकार छीन रहे हैं, जिससे वह निर्मम हो गया है। उसके भीतर प्रतिशोध का भाव काफ़ी प्रबल हो गया है।

चरित्रांकन के अंतर्गत हम उसके पेशे, उसके संबंधों, लक्ष्य, बाधाओं और उसके बारे में सूचनाएँ देते हैं। आप जानते हैं कि किसी कहानी में चरित्र तो कई होते हैं। चरित्र दो तरह के होते हैं मुख्य चरित्र और अनुषंगी यानी सहायक चरित्र। कथा आम तौर पर मुख्य चरित्र की होती है। बाकी सहायक चरित्र उस कहानी के विकास में सहायक होते हैं। मुख्य चरित्र के सबसे बड़े विरोधी यानी खलनायक अथवा खलनायिका की भी अपनी कहानी होती है। इनके अलावा नायिका की कहानी भी महत्त्वपूर्ण होती है। पर मुख्य चरित्र के मित्र, नायिका की सहेली अथवा खलनायक के सहयोगी की कहानी को उपकथा कहते हैं। कभी–कभी इसे भी दिखलाना पड़ता है क्योंकि वह भी कहानी के विकास के लिए ज़रूरी हो सकता है।

चूँकि कहानी तो मुख्य चरित्र की ही प्रमुख होती है इसलिए मुख्य चरित्र को समुचित प्रमुखता दी जाती है इसलिए दृश्यों की परिकल्पना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य चरित्र सर्वाधिक सक्रिय रहे। यानी उसे अधिकाधिक दृश्यों में रखा जाए और उन दृश्यों के भीतर अच्छे संवाद भी उसी मुख्य चरित्र को दिए जाएँ। इसका अर्थ यह नहीं कि आप सहायक चरित्रों की उपेक्षा कर दें। आप उन पर भी ध्यान दें लेकिन उसी हद तक जिससे वे सहायक चरित्र बने रहें।

हर चरित्र का अपना इतिहास होता है, वर्तमान और भविष्य होता है, उसके स्वप्न और लक्ष्य होते हैं, लेकिन उसकी राह में बाधाएँ भी होती हैं। उसका स्वभाव कैसा है, कथा के अन्य चरित्रों के साथ उसके संबंध कैसे हैं आदि को अलग–अलग पृष्ठों पर लिख लेना चाहिए। यानी चरित्र 'क' के बारे में सारी जानकारी एक जगह हो। उसी तरह अन्य चरित्रों के बारे में भी जानकारी लिख लेनी चाहिए। ऐसा करने का लाभ क्या है? इससे न केवल कहानी विकसित करने में सहायता मिलती है बल्कि पहले से विकसित कहानी (मसलन साहित्यिक कहानी, उपन्यास अथवा नाटक) के विश्लेषण में भी सहायता मिलेगी। यदि ऐसा कैरेक्टर चार्ट आपने बना लिया है तो चरित्र में निरंतरता, संगति बनाई रखी जा सकती है। उदाहरण के लिए कोई चरित्र ईमानदार है। इसे प्रारंभ के दृश्यों में दिखलाया जा चुका है। तब आगे के दृश्य में यदि वह झूठ बोलता दिखलाया गया है तो यह असंगति कहलाएगी। दर्शक इसे अपने गले के नीचे नहीं उतार पाएंगे। मैं यह नहीं कहता कि उसके झूठ बोलने को संगत दिखलाना असंभव है। वह भी संभव और संगत हो सकता है लेकिन उसके लिए औचित्य वाला कारण दिखलाना होगा।

चरित्र क्या है? कोई चरित्र वही है जो वह करता है। मान लें कि वह पॉकेटमार है तो जाहिर है वह पुलिस, अदालत से नहीं डरेगा । वह हिम्मती होगा। अचानक खूब पैसा आता है तो उसे खर्चीला भी होना चाहिए। चूँकि वह पॉकेटमार है इसलिए उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होनी चाहिए। पॉकेटमारों के बारे में दर्शकों की भी धारणा यही होगी। वे उस चरित्र पर विश्वास भी कर लेंगे। उसे विश्वसनीय और जीवंत मान लेंगे। इस तरह आप देखते हैं कि चरित्र अपने कथन से नहीं, बल्कि अपने कर्म से जीवंत और विश्वसनीय बनता है।

चरित्र का कहानी से, उसके प्लॉट से क्या संबंध है? कहानी का प्लॉट चरित्र का क्रियाकलाप होता है और चरित्र प्लॉट का क्रियाकलाप होता है। दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। चरित्र के बगैर प्लॉट नहीं हो सकता और प्लॉट के बगैर चरित्र नहीं बन सकता।

नया चरित्र कैसे गढ़ते हैं? पहले हम देखें कि चरित्र कैसे–कैसे होते हैं? आर्किटाईप यानी आदर्श चरित्र। यह अपने आदर्श पर अडिग होता है। वह व्यावहारिक, यथार्थवादी नहीं होता। वह कहीं समझौता नहीं करता। आदर्श ही उसका यथार्थ होता है और वही उसका लक्ष्य भी होता है। इसके लिए वह कष्ट सह सकता है, आवश्यकता पड़ने पर वह जान भी दे सकता है। 'महाभारत' धारावाहिक में युधिष्ठिर आदर्श चरित्र हैं। 'रामायण' धारावाहिक में राम भी आदर्श चरित्र हैं। दूसरे प्रकार के चरित्र को टाईप यानी प्रतिनिधि चरित्र कहते हैं। एक जमाना था जब हिंदी फिल्मों में ड्राइवर वाले सारे चरित्र गोवा के डिसूजा – डीकोस्टा – डेविड ही हुआ करते थे और सबके सब पियक्कड़ होते थे। कुछ लोग

ऐसे चरित्रों को स्टॉक कैरेक्टर भी कहते हैं लेकिन सोचिए कि ड्राइवर तो भारत के किसी प्रांत का हो सकता है, वह ईसाई के बजाए हिंदू, मुसलमान या सिक्ख हो सकता है और पियक्कड़ के बजाए धर्मभीरु, आदर्शवादी भी हो सकता है।लेकिन एक बार यदि गोवा वाला पियक्कड़ ड्राइवर चरित्र हिंदी फिल्म में लोकप्रिय हो गया तो हर ड्राइवर वैसा ही बनाया जाएगा। हिंदी फिल्म वाले पुरानी छवि यानी इस्टेबलिश्ड इमेज को बदलने से बहुत डरते हैं क्योंकि इस्टैबलिश्ड ईमेज का अर्थ है सफलता का प्रमाण इसलिए ऐसे चरित्र परिपाटी बन जाते हैं और उस परिपाटी से मुक्ति आसान नहीं होती। टेलीविज़न धारावाहिक में भी नकारात्मक चरित्र गैर ज़िम्मेदार, शराब पीने वाला, परिवार को दुख देने वाला और समाज विराधी कार्य करने वाला ही होता है।

तो नया चरित्र किसे कहेंगे? ड्राइवर तो ड्राइवर ही रहेगा लेकिन उसे गोवा–निवासी बनाने के बजाए उत्तर प्रदेश का दिखलाया जा सकता है। यदि वह दारू पीने के बजाए अपनी कमाई का एक हिस्सा अनाथालय को दान दे दिया करे तो दर्शकों को इस चरित्र में नयापन मिलेगा। उसी तरह टेलीविज़न धारावाहिक में ऐसे नकारात्मक चरित्र में भी उसकी नकारात्मकता के पीछे का मनोविज्ञान दिखाया जाए जो दर्शकों को इसमें नयापन मिल सकेगा।

आम तौर पर फिल्मी चरित्र एक आयामी होते हैं। चरित्र प्रेमी हैं तो बस प्रेम करते फिरेंगे। पूरी फिल्म में प्रेम के ही इर्द–गिर्द उनका क्रियाकलाप रहेगा और तमाम बाधाओं को पार करते हुए वे आखिर में विवाह कर लेंगे। पर्दे पर हम यही देखते आए हैं लेकिन जरा सोचिए कि क्या प्रेम में हमेशा ऐसा ही होता है?

भारत की सामाजिक संरचना में विवाह पूर्व प्रेम की अवधारणा के लिए कोई जगह नहीं है इसलिए समाज विवाह पूर्व प्रेम को विवाह के रूप में सफल नहीं होने देता। शिवानी के कई उपन्यासों पर टेलीविज़न धारावाहिकों का निर्माण हुआ हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', 'कर्मभूमि' 'निर्मला', मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज', वृंदालाल वर्मा के उपन्यास 'मृगनयनी', श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' भीष्म साहनी के 'तमस' आदि पर टेलीविज़न धारावाहिकों का निर्माण हुआ, जिन्हें काफ़ी अधिक प्रसिद्धि मिली। इन धारावाहिकों में प्रेम, रोमांस, युगीन यथार्थ, राजनीति आदि से संबंधित कई तरह की वैचारिकी है। इन धारावाहिकों में आप चरित्र के कई आयामों से परिचित होंगे। 'गोदान' के होरी के चरित्र में जिम्मेदारी, छल नियतिवाद, धर्मभीरूता प्रपंच आदि कई तरह के भाव आप देखेंगे। बहुआयामी चरित्र से ही टेलीविज़न धारावाहिक लोगों को आकर्षित करते हैं।

चरित्रांकन

कोई भी व्यक्ति बगैर किसी कारण के कुछ नहीं करता। कारण, उसके व्यक्तित्व से सीधे जुड़ा होता है। उस व्यक्ति का नज़रिया दुनिया के बारे में क्या है और दुनिया से उसका संबंध कैसा है, कारण इनसे भी जुड़ा होता है। ठीक है, कारण है लेकिन एक ही कारण के चलते, एक ही परिस्थिति में अलग–अलग चरित्र क्या एक जैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे? नहीं, हर किसी की प्रतिक्रिया अलग–अलग होगी। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हर चरित्र की अपनी प्रवृत्तियाँ होती हैं, अपना व्यक्तित्व होता है। हर चरित्र का अपना अलग इतिहास होता है। किसी चरित्र की क्रिया–प्रतिक्रिया में उसकी प्रवृत्ति और इतिहास सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

मान लें कि एक मामूली क्लर्क किसी बड़ी कंपनी के भव्य कार्यालय में इंटरव्यू देने पहुँचता है तो वहाँ उसका व्यवहार कैसा होगा? इस प्रश्न का उत्तर उसके 'मामूलीपन' में छिपा है। यहाँ 'मामूलीपन' और 'बड़ी कंपनी के भव्य कार्यालय' के बीच विपर्यय, कंट्रास्ट है यानी बिल्कुल उलट जैसा अंतर है। आम लोग मामूलीपन से निष्कर्ष यह निकालेंगे कि उस क्लर्क के कपड़े मामूली होंगे, वह थोड़ा नर्वस होगा, वह हताश होगा और भव्य दफ्तर में उसका व्यवहार अटपटा होगा। पटकथा लेखक को उस चरित्र के व्यवहार की तार्किक कल्पना करनी होती है और कल्पना भी ऐसी कि उस क्लर्क का सारा व्यवहार सहज और स्वाभाविक लगे। वास्तविक जीवन के विभिन्न चरित्रों का जैसा अध्ययन कलाकार अपने अभिनय को वास्तविक बनाने के लिए करते हैं, प्रायः वैसा ही अध्ययन पटकथा लेखकों को करना चाहिए। इससे न केवल नए चरित्रों के सृजन में सहायता मिलेगी बल्कि दूसरों की कहानियों पर पटकथा लिखते समय चरित्रों की व्याख्या करने में भी आसानी होगी।

संवाद और प्लॉट चरित्रांकन के अनिवार्य तत्व हैं। चरित्र को जीवंत बनाने में चरित्रांकन सहायक होता है। चरित्र को असली, वास्तविक और जीवंत कैसे बनाते हैं?

इसके लिए पटकथा लेखक अपने चरित्रों को इस तरह से इतना अधिक जान ले कि किसी खास परिस्थिति में वह क्या प्रतिक्रिया करेगा, इसकी सटीक भविष्यवाणी वह कर सके। मान लीजिए कि एक चरित्र डरपोक है और अपना भय छिपाने के लिए वह डींग मारता रहता है। वह तैरना नहीं जानता पर कॉलेज में तैराकी का चैम्पियन होने की बात फैलाता फिरता है। अब ऐसे चरित्र से कहा जाए कि वह नदी में तैरे तो वह कैसी प्रतिक्रिया करेगा? इसे जानने के लिए आपका मनोवैज्ञानिक होना ज़रूरी नहीं है बल्कि उस चरित्र के व्यक्तित्व के भीतर मौजूद तर्कों तक अपनी विश्लेषण क्षमता के सहारे पहुँचने की आपमें क्षमता होनी चाहिए। अब देखिए कि पानी से भय और तैरने की अक्षमता यही इस चरित्र के व्यक्तित्व का तर्क है। उसे तैरने कहा जा रहा है पर उसे तैरना नहीं आता। डूबने की गंभीर आशंका है, तो वह क्या करेगा? उसे झूठी इज्ज़त बचानी है, प्राण भी बचाने हैं। पहले वह बहाने बनाएगा, बहाने कारगार न होंगे तो गुस्सा करेगा। यदि उसे जबरन पानी में डालने का उपक्रम हो तो वह टूट जाएगा और भय से फूट–फूटकर रोने लगेगा लेकिन यदि उसकी प्रेमिका सामने हो तो अपनी इज्ज़त बचाने के लिए वह पानी में कूद जाएगा, भले ही उसे डूबना क्यों न पड़े। यदि पटकथा में चरित्र को इस तरह से आप दिखलाएंगे तो दर्शक उसे सहज और स्वाभाविक मानेंगे।

चरित्र को जीवंत बनाने के लिए निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए :

- चरित्र से ऐसा क्रियाकलाप कराया जाए जो उसकी प्रवृत्ति और लक्ष्य के अनुरूप हो।
- संवाद चरित्र के अनुकूल लिखे जाएँ।
- चरित्र का नाम उसकी प्रवृत्ति और लक्ष्य के अनुरूप रखा जाए।
- चरित्र का बाहरी उद्देश्य और आंतरिक उद्देश्य न केवल स्पष्ट हो बल्कि उसमें संगति भी हो।
- चरित्र की वेशभूषा और चरित्र की प्रवृत्ति लक्ष्य के अनुरूप होनी चाहिए।

फ़िल्म मे ंकम चरित्र रखे जाते हैं। टेलीविज़न धारावाहिक में एपीसोड की मांग के अनुसार पात्रों की संख्या बढ़ सकती है। उपन्यास का यदि टेलीविज़न धारावाहिक की पटकथा में रूपांतरण हो, तो उपन्यास के अनुसार ही पात्र रखने पड़ेंगे। आपने हीरानंद सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के उपन्यास 'नदी के द्वीप' को पढ़ा होगा। भुवन और रेखा इसमें दो पात्र हैं। मान लीजिए कि भुवन रेखा से प्रेम करता है लेकिन रेखा भुवन से प्रेम नहीं करती तो इन दो चरित्रों के चलते कहानी के इतने कोण बनेंगे ;

- भुवन का रेखा के प्रति रुझान
- रेखा द्वारा भुवन की उपेक्षा

लेकिन रेखा किससे प्यार करती है? मान लीजिए कि वह ध्रुव से प्यार करती है। तब इन तीन चरित्रों के चलते कहानी के कितने कोण बन जाएँगे :

- भुवन का रेखा के प्रति रुझान
- रेखा द्वारा भुवन की उपेक्षा
- रेखा द्वारा ध्रुव के प्रति रुझान
- ध्रुव का रेखा के प्रेम पर प्रतिक्रिया
- भुवन का ध्रुव के बारे में प्रतिक्रिया
- ध्रुव का भुवन के बारे में प्रतिक्रिया

यानी अब कहानी के छह कोण हो गए। इस तरह कहानी में चरित्रों की संख्या बढ़ाते जाइए इससे कहानी फैलती जाएगी। इसका अर्थ यह हुआ कि चरित्रों की गतिशीलता जितनी बढ़ेगी, कहानी उतनी ही बिखरेगी और उतनी ही बेअसर होती जाएगी।

इसलिए टेलीविज़न धारावाहिक के किसी एपीसोड की कहानी में मुख्य चरित्र अधिक नहीं रखे जाते हैं। इसकी कहानी में संवाद, ध्वनि–प्रभाव और संगीत का भी प्रयोग होता है। इसमें प्राकृतिक या विशेष प्रयोजन से दृश्यों का भी निर्माण होता है, भाव–भंगिमाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है और कैमरे का तो सर्वाधिक महत्त्व होता है।

3.6 संपादन

शूटिंग के बाद फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक को अंतिम रूप देने की क्रिया को संपादन कहते हैं। इसके अंतर्गत खराब शॉट को हटाया जाता है, फालतू शॉट को छाँटा जाता है। उसके शॉटों को दृश्यवार सजाया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि फिल्म की शूटिंग दृश्य– क्रम के अनुसार नहीं हो पाती है। खैर, दृश्यों को क्रम देने के बाद उसमें संवाद और गीत (यदि है) की रिकॉर्डिंग मिलाई जाती है। फिर उसमें पृष्ठभूमि संगीत को डाला जाता है। पहले यह काम काफ़ी दुष्कर माना जाता था लेकिन अब संपादन की मशीनें भी कंप्यूटर से जुड़ गई हैं तो संपादन का काम न केवल आसान हो गया बल्कि नई तकनीक के बूते संपादक

फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक के एपीसोड को अधिक आकर्षक रूप में पेश करने में सक्षम हो गया लेकिन एक पटकथा लेखक को फिल्म–संपादन के बारे में क्यों जानना चाहिए ? पहला कारण तो यह है कि फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक संपादक फिल्म/धारावाहिक स्क्रिप्ट को पढ़कर और उसमें दिए गए निर्देशों के अनुसार संपादन करता है। एक फिल्म में कोई 120 दृश्य होते हैं। टेलीविज़न धारावाहिक में भी कई दृश्य होते हैं। हर दृश्य में कई–कई शॉट होते हैं। उन शॉटों को किस क्रम में रखना है, यह भी स्क्रिप्ट ही बताता है। इसके अलावा, दो दृश्यों को कैसे जोड़ना है, इसकी जानकारी भी स्क्रिप्ट से ही मिलती है। कैमरामैन के लिए किसी शॉट को लेने के लिए कई–कई विकल्प रहते हैं क्योंकि पटकथा लेखक शॉट के बारे में नहीं लिखता है लेकिन फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक संपादक के लिए स्क्रिप्ट ही है। उसे तो उसी के अनुसार संपादन करना है। इन्हीं कारणों से पटकथा लेखक को संपादन, विशेषकर दो दृश्यों के जुड़ाव (इसे संक्रमण या ट्रांजिशन कहते है) के बारे में जानना आवश्यक है। संक्रमण (ट्रांजिशन) की कुछ आवश्यक तकनीकों के बारे में कुछ आवश्यक जानकारी आगे दी जा रही है :

ब्लैक आउट : इसमें पूरा पर्दा काला हो जाता है। इसे किसी दृश्य की समाप्ति को दर्शाने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

सुपर इंपोज : इसमें एक शॉट के ऊपर दूसरा शॉट चिपका देते हैं। इसका उपयोग फिल्म के टाईटिल्स को दिखलाने में अक्सर किया जाता है जैसे शॉट चल रहा होता है और उसके ऊपर ही कलाकार, निर्माता, निर्देशक आदि के नाम अक्षरों में उभरते रहते हैं। यह फ़िल्म के लिए तकनीक है, लेकिन टेलीविज़न धारावाहिक में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

कट टू : यह सबसे प्रचलित संक्रमण है। इसमें एक दृश्य को सीधे दूसरे दृश्य से जोड़ दिया जाता है। इसमें संक्रमण तत्काल हो जाता है। दो दृश्यों के बीच कोई अंतराल या अंतराल का बोध कराने वाला शॉट नहीं आता।

डिजॉल्व : इसमें पहले दृश्य के आखिरी हिस्से – जो कुछ सेकेंडों का होता है – पर दूसरे दृश्य के कुछ सेकेंड वाले प्रारंभिक हिस्से को सुपर इंपोज करते हैं।

इनसर्ट : इसमें पटकथा के प्रवाह से थोड़ा हटकर किसी चीज की ओर दर्शकों का ध्यान खींचना हो तो दृश्य के बीच में इस लघु दृश्य या शॉट को घुसा दिया जाता है, इसको दिखलाने के बाद दृश्य पूर्ववत् चलने लगता है। मान लें कि कोई कार भागी जा रही है और आपको दर्शकों को बतलाना है कि यह कार मारुति 800 है तो कार के भागने के शॉट के बीच कार पर लिखी 'मारुति 800' को अलग से क्लोज अप में शूट कर चिपका देते हैं। उसके बाद दृश्य पूर्ववत चलता रहता है।

फ्रीज-फ्रेम : इसका अर्थ होता है पर्दे पर दिखाई जाने वाली तस्वीर को वहीं रोक देना यानी फ्रेम को फ्रीज या जाम कर देना। इसका इस्तेमाल टेलीविज़न धारावाहिकों में खूब किया जाता है। जहाँ

एपिसोड खत्म होता है, उस फ्रेम को फ्रीज़ कर देते हैं। इसके बाद टाइटिल दिखलाए जाने लगते हैं। आम तौर पर फ्रीज़ वहाँ करते हैं जहाँ दर्शकों को लगे कि अब आगे क्या होगा। इसे देखकर दर्शकों में अगला एपिसोड देखने की उत्सुकता बनी रहती है।

मोंटाज़ : कोई खास प्रभाव पैदा करने के लिए विभिन्न स्थानों पर लिए गए अलग–अलग शॉटों को जोड़कर मोंटाज बनाते हैं। मान लें कि नायक नायिका को ढूँढने कई जगहों पर जैसे बस अड्डा, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा, पार्क आदि जाता है और वह कहीं नहीं मिलती तो इनके शॉट इकट्ठा कर संक्षेप में दर्शकों को बता दिया जाता है कि इतनी जगहों पर ढूँढने के बाद भी नायिका नहीं मिली। आम तौर पर इसमें संवाद नहीं होता। हाँ, पार्श्व संगीत हो सकता है।

इसप्लिट स्क्रीन : इसमें फ्रेम के आधे हिस्से में एक लोकेशन के शॉट तो दूसरे आधे हिस्से में दूसरे लोकेशन का शॉट दिखलाया जाता है। दो पात्र जब टेलीफोन पर बात कर रहे हों तो अक्सर इसका इस्तेमाल किया जाता है।

मैच कट : निरंतरता या संबद्धता को दर्शाने के लिए मैच कट का इस्तेमाल होता है। मैच कट कई प्रकार के हो सकते हैं कभी संवाद से, कभी चाक्षुष के सादृश्य से और कभी संदर्भ से। इससे कहानी में प्रवाह बनी रहती है। जैसे पिछले दृश्य के अंत में माँ कहती है– ''मेरा बेटा जहाँ भी होगा, सुखी होगा।'' इसके आगे के दृश्य में हम देखते हैं कि उसका बेटा जेल में है। वैसे इन दोनों दृश्यों में स्थिति उल्टी है पर एक सादृश्य है 'बेटा' इसीलिए इसे मैच कट कहा जाएगा। इसमें जहाँ माँ अपना संवाद बोलती है वहीं बेटे के जेल वाला चाक्षुष डिजॉल्व होता है।

वाईप : इसे दृश्य को पोंछ डालने जैसा समझ लीजिए । मान लीजिए कि कोई भाषण दे रहा है। उसका पहला वाक्य ठीक है, दूसरा, तीसरा और चौथा वाक्य ठीक नहीं है, आगे पाँचवाँ–छटा वाक्य ठीक है। अब इसमें से दूसरे, तीसरे और चौथे वाक्य को निकालना है तो इन तीनों वाक्यों को वाईप कर देते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि पहले वाक्य के बाद पाँचवाँ–छटा वाक्य आ जाएगा।

फ्लैश बैक : यूँ तो यह कहानी की तकनीक है लेकिन इसका उपयोग टेलीविज़न धारावाहिक या फिल्म संपादन में भी किया जाता है। किसी चरित्र को किसी बात पर कोई पुरानी घटना याद आ जाती है तो इसे दिखलाने के लिए उस बात का जिक्र आते ही पुरानी घटना वाले दृश्य दिखलाए जाने लगते हैं पर कुछ ऐसा संकेत दे देते हैं कि यह घटना पुरानी है। जैसे

आजकल टेलीविज़न में फ्लैश बैक दिखलाते वक्त पुराने रंगीन दृश्य को एक ही रंग में दिखला देते हैं। इससे दर्शक समझ जाते हैं कि पुरानी घटना है।

फ्लैश फॉरवर्ड : इसका भी इस्तेमाल कहानी लिखने और फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक के एपीसोड के संपादन दोनों में होता है। मान लीजिए कि कोई तैरने से डरता है और उससे तैरने के लिए मजबूर किया जा रहा है तब आगे की वह कल्पना कर लेता है कि वह पानी में कूद गया और अब डूब रहा है। हालांकि वास्तविकता यह है कि वह पानी में कूदा ही नहीं है। इसी को फ्लैश फॉरवार्ड कहते हैं। संपादन करते समय उस पात्र के चेहरे के ऊपर कई वृत्तों को एक साथ घूमते दिखलाया जाता है। दर्शकों को आभास हो जाता है कि यह दृश्य वर्तमान का नहीं भविष्य का है।

ड्रीम सिक्वेंस : यह भी फ्लैश फॉरवर्ड जैसा होता है। फर्क यह है कि इसे आम तौर पर गानों को दिखलाने में किया जाता है। नायक या नायिका कल्पना करते हैं कि वे दोनों गाना गा रहे हैं। बस शुरू हो जाता है नए नए सेट, लोकेशन और भव्य पोशाकों की नुमाइश करने का तरीका। इसकी तकनीक फ्लैश फॉरवर्ड वाली ही होती है।

3.7 रूपान्तरण की प्रक्रिया

साहित्यिक कहानी और उपन्यास के फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक की पटकथा में रूपान्तरण की प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं है। कहानी, चरित्र, प्लॉट इत्यादि तो दोनों में ही होते हैं। सिर्फ दोनों के आकार में अंतर होता है। कहानी पर आम तौर पर टेलीफिल्म बनती है जो 60 अथवा 100 मिनट की होती है जबकि उपन्यास पर बनी फिल्म ढाई–तीन घंटे की होगी। इतना अधिक समय टेलीविज़न नहीं दे सकता इसलिए उपन्यास को धारावाहिक के रूप में प्रसारित किया जाता है। जब उपन्यास पर फिल्म बनानी हो तो कहानी के रूपान्तरण वाली प्रक्रिया को हम अपनाते हैं। यदि उपन्यास पर धारावाहिक का निर्माण होना हो तो प्रतिपादन यानी ट्रीटमेंट लिखते समय हम उसकी कहानी को प्रकरणों (एपिसोड) में बाँट देते हैं। फिर प्रत्येक प्रकरण की पटकथा और संवाद लिखे जाते हैं।

उपन्यास के फिल्म रूपान्तरण के बेहतरीन उदाहरण हैं– विमल मित्र का उपन्यास 'साहब बीबी और गुलाम' इस उपन्यास को पढ़िए और इस पर बनी फिल्म को कई बार देखिए। इससे आपको रूपांरतण के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण निर्मित करने में सहायता मिलेगी।

उसी तरह प्रेमचंद के 'गोदान' को पढ़िए और उसके टेलीविज़न धारावाहिक की पटकथा में रूपांतरण को समझने के लिए यू–टयूब पर उपलब्ध गोदान धारावाहिक के एपीसोड को कई बार देखिए।

टेलीविज़न की सांकेतिक भाषा होती है। उपन्यास के टेलीविज़न धारावाहिक में रूपांतरण के लिए यह जानना आवश्यक होता है–

संकेत	माध्यम	अर्थ
1) क्लोजअप	मुखाकृति	निकटता
2) मीडियम शॉट	शरीर का अधिकांश भाग	व्यक्तिगत संबंध
3) फुल–शॉट	पूरा शरीर	सामाजिक संबंध
4) लौंग शॉट	पात्र और परिवेश	प्रसंग
5) पैन–डाउन	कैमरे द्वारा ऊँचाई से लिया गया शॉट	प्रमुख
6) पैन–अप	कैमरे द्वारा नीचे से लिया गया शॉट	लघु
7) कट	एक चित्र से दूसरे पर जाना	उत्सुकता उभारना

3.8 सारांश

इस इकाई में आपने इन बातों की जानकारी प्राप्त कि :

- उपन्यास क्या है और उसकी संरचना के कौन–कौन से तत्व होते हैं? मुद्रित उपन्यास पर बनी फिल्मों या टेलीविज़न धारावाहिक के बारे में थोड़ी–सी जानकारी के बाद उपन्यास और फिल्म या टेलीविज़न धारावाहिक के बीच प्रकृतिगत अंतर क्या है इससे आप परिचित हुए।
- आपने टेलीविज़न पटकथा में उपन्यास को किस प्रकार रूपांतरित किया जाता है, चरित्र किस प्रकार गढ़े जाते हैं और चरित्रांकन की विधि क्या है, इससे संबंधित जानकारी भी इस इकाई में प्राप्त की। इसके अतिरिक्त फिल्म संपादन की युक्तियों से संबंधित ज्ञान प्राप्त कर इस इकाई में आपने संपादन कौशल के तकनीकों को भी सीखा।

3.9 अभ्यास के प्रश्न

1. उपन्यास को पटकथा में रूपांतरित करने की कला पर प्रकाश डालिए।
2. किसी उपन्यास को पढ़िए और उसको टेलीविज़न की पटकथा में रूपांतरित कीजिए।
3. उपन्यास और टेलीविज़न की पटकथा में क्या अंतर है? सोदाहरण समझाइए।